संजीव के कथा-साहित्य का समाजशास्त्रीय अनुशीलन

विद्यासागर विश्वविद्यालय की पी-एच.डी.(हिंदी) उपाधि के लिए प्रस्तावित

SYNOPSIS

शोध सार

निर्देशक

डॉ. मुन्नी गुप्ता

असिस्टेंट प्रोफेसर

हिंदी विभाग

प्रेसिडेंसी विश्वविद्यालय

कोलकाता – 700073

पश्चिम बंगाल

शोध छात्र

ओम प्रकाश रविदास

रजिस्ट्रेशन न.– 00057 OF 2015-16

हिंदी विभाग

विद्यासागर विश्वविद्यालय

मेदिनीपुर – 721102

पश्चिम बंगाल

हिंदी विभाग

विद्यासागर विश्वविद्यालय

2020

प्रस्तावना

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कथा साहित्य का कथा-क्षितिज अत्यंत व्यापक और संघर्षमय रहा है। समकालीन कथा-साहित्य के इस दौर में संजीव जैसे कथाकार ने अपने चारों तरफ फैले व्यापक सामाजिक परिदृश्य को अपने जीवन के अनुभवों में बाँधकर उन्हें प्रतिक्रियात्मक अवधारणा के रूप में अभिव्यक्त किया। निरंतर अपनी धारदार लेखनी से कथा-साहित्य को समृद्धि प्रदान कराते हुए बहुआयामी प्रतिभा के धनी और संघर्षधर्मी कथाकार संजीव का समकालीन कथा-साहित्य में एक अलग और महत्वपूर्ण स्थान है।

स्वतंत्रता के पश्चात एक नये समाज के निर्माण के लिए, जीवन की सच्चाई और साहित्य के यथार्थ में सामंजस्य के लिए उन्होंने धारदार लेखनी को ही आधार बनाया। सामाजिक अंतर्विरोधों को अपने अनुभव और वैज्ञानिक सोच की कसौटी पर कसकर उन्होंने अपनी एक सुस्पष्ट विचारधारा, बेबाक अभिव्यक्ति एवं लेखन की पृष्ठभूमि तैयार की। सत्तर के दशक से लगातार रचना करते हुए उन्होंने कई कालजयी कृतियों को जन्म दिया। उनका यह अवदान कहानी और उपन्यास दोनों क्षेत्रों में है। उनके पूरे कथा-साहित्य में आम जनता के दुख-दर्द से मुक्ति के लिए छटपटाहट है। प्रेमचंद की यथार्थवादी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने अपने व्यक्तित्व को समाज के प्रति समर्पित एक सशक्त सर्जक और साहित्यिक चिंतक के रूप में उभारा। वे हमेशा साहित्य के स्तर और उद्देश्य के प्रति सचेत रहे हैं। उन्होंने साहित्य का स्तर बचाये रखते हुए उसे अश्लीलता से सर्वथा दूर रखा। अब तक उन्होंने दसियों उपन्यास और शताधिक कहानियों की रचना की है, अभी भी उनके अपार लेखन की संभावनाएं बनी हुई है। दलित, उपेक्षित और अछूत लोग, अज्ञान, अंधविश्वास, धर्म, लिंग-भेद, प्रौढ़-शिक्षा, किसान, भूमिहीन मजदूर, सामंत, पूंजीपति, डाकू, आदिवासी, स्पेश, भूमंडलीकरण, सांप्रदायिकता और टेक्नोलॉजी इत्यादि संजीव के लेखन के प्रमुख विषय रहे हैं। व्यक्ति और व्यक्तित्व पर पड़ रहे दबावों की द्वंद्वात्मकता के संदर्भ, मनुष्य और मानव समाज की नियति की खोज, उनका विवेचन उसकी कथात्मक, कलात्मक अन्विति आदि इनके साहित्य के केंद्र बिंदु रहे हैं। जीवन-मृत्यु, शोध, अमरत्व, टेस्ट-ट्यूब बेबी, ईश्वर, सेक्स इत्यादि को इन्होंने प्रयोगशाला में लाकर खड़ा कर दिया है। यह प्रयोग न केवल उनकी रचनाओं में बल्कि उनके वैयक्तिक जीवन में भी देखने को मिलती है। बचपन से ही वे जिज्ञासु प्रवृत्ति के रहे हैं --"मैं उन दिनों नंगधडंग सियारों, नीलगायों, लोमड़ियों, गिलहरियों को जिज्ञासु नजरों से जाँचता-परखता, भैंस की पीठ पर चरगाहों की सैर किया करता। केले की छाल की पनही, पलास के पत्तों का टोप, कूंई की कंठी, सोते का पानी।"[1]

उनके इसी जिज्ञासु वृत्ति ने उन्हें यथार्थवादी बनाया और वे प्रत्येक चीज को गहराई तक समझने की कोशिश करने लगे --"मैं चीजों को संपूर्णता में परखना चाहता हूँ। कोई भी सपाट या सरलीकृत प्रतिचयन मेरा काम्य या अभिप्रेत नहीं, कोई चीज अच्छी है या बुरी है तक ही नहीं, अच्छी

बुरी है तो 'क्या', 'कितना','कब', 'क्यों' तक फैलती है मेरी जिज्ञासा।"2 और इसी जिज्ञासु वृत्ति के कारण उन्होंने अनेक अनछुए पहलुओं को छुआ –'जंगल जहाँ शुरू होता है' में डाकू समस्या के मूल में वहाँ की भौगोलिक परिस्थितियाँ, आर्थिक विषमताएँ, अशिक्षा, बेरोजगारी, सामंती-व्यवस्था, अन्याय, अत्याचार, हिंसा, अपराध, उत्पीड़न, अवसरवादिता, अराजकता, भ्रष्टाचार इत्यादि; 'सावधान! नीचे आग है' में कोयलांचल में काम करने वाले मजदूरों की दुर्दशा, सूदखोरी, माफियातंत्र, ठेकेदारी, सरकारी संपत्ति की लूट; 'सर्कस' में सर्कस की बाह्य चमक-धमक के साथ सर्कस की आंतरिक दुनिया एवं उसमें काम करने वाले कलाकारों का दर्द, उपेक्षा, शोषण, त्रासदी एवं सर्कस मालिकों का अत्याचार इत्यादि। वहीं- 'सूत्रधार' में भोजपुरी के शेक्सपीयर भिखारी ठाकुर के त्रासद जीवन के साथ भोजपुरी लोकजीवन एवं लोक-संस्कृति की झलक मिलती है।

वे अपने लोक, समाज, संस्कृति एवं देश से बहुत प्रेम करते हैं, वे व्यवस्था में बदलाव लाना चाहते थे, जिसके लिए बचपन से ही वे अपने मित्र सूरज के साथ मिलकर प्रधानमंत्री के नाम खत लिखा करते थे। आजादी के तीस साल बाद भी जब आम जनता की अवस्था में कोई परिवर्तन नहीं आया, अमीर और अमीर बनता गया, गरीब और गरीब, तो उनकी छटपटाहट वृहत्त से वृहत्तर होती गई। यह वृहत्तर आयाम ही उनके कथा-साहित्य में रूपांतरित हुई है। प्रस्तुत शोध प्रबंध का विषय 'संजीव के कथा-साहित्य का समाजशास्त्रीय अनुशीलन' है। प्रथम अध्याय में ही साहित्य के समाजशास्त्र के स्वरूप पर चर्चा है और पूरे कथा साहित्य को समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से समझने का प्रयास है। अध्ययन और विवेचन की सुविधा की दृष्टि से मैंने अपने शोध प्रबंध को आठ अध्यायों में विभाजित कर विषय को प्रस्तुत किया है, जो निम्नलिखित है

पहला अध्याय	: साहित्य के समाजशास्त्र का स्वरूप
दूसरा अध्याय	: संजीव: परिवार, परिवेश, प्रकृति एवं रचना संसार
तीसरा अध्याय	: संजीव के उपन्यासों की कथावस्तु का समाजशास्त्रीय विश्लेषण
चौथा अध्याय	: संजीव की कहानियों की कथावस्तु का समाजशास्त्रीय विश्लेषण
पाँचवां अध्याय	: संजीव के कथा-साहित्य में समाजार्थिक चिंतन का स्वरूप
छठवां अध्याय	: संजीव के कथा-साहित्य में आंचलिकता बोध
सातवां अध्याय	: वैश्वीकरण का परिप्रेक्ष्य और संजीव का कथा-साहित्य
आठवां अध्याय	: संजीव के कथा-साहित्य की भाषा एवं शिल्प-विधान

पहला अध्याय: **'साहित्य के समाजशास्त्र का स्वरूप'** शीर्षक के अंतर्गत समाजशास्त्र को परिभाषित करते हुए उसकी अवधारणा पर विस्तार से चर्चा की गई है। साथ ही साथ साहित्य के समाजशास्त्र के स्वरूप तथा साहित्य और समाजशास्त्र के संबंध पर भी प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त भारत में समाजशास्त्र का विकास एवं उसकी प्रवृत्तियां, पाश्चात्य और पारंपरिक

समाजशास्त्र तथा दोनों के सम्निवत परंपरा एवं चिंतन का भारत पर प्रभाव, साहित्य और साहित्यकार का संबंध, पाठकों के बीच साहित्य, साहित्य में समाजशास्त्र का विरोध, साहित्यानुशीलन की सामाजिक दृष्टि, साहित्य का समाजशास्त्र एवं मादाम स्तेल, साहित्य के समाजशास्त्र की आवश्यकता और उसकी विशेषता आदि पक्षों का विवेचन किया गया है।

समाजशास्त्र अंग्रेजी के सोशियोलॉजी (sociology) शब्द का हिंदी पर्याय है। सोशियोलॉजी शब्द लैटिन के 'सोशियस' (socius) और ग्रीक के 'लोगस' (logus) शब्द से मिलकर बना है जहाँ 'सोशियस' का अर्थ है 'समाज' तथा 'लोगस' का अर्थ है 'शास्त्र' या 'विज्ञान' अर्थात 'समाजशास्त्र' का शाब्दिक अर्थ हुआ 'समाज का शास्त्र' या 'समाज का विज्ञान'। प्रमुख समाजशास्त्री आगस्ट काम्टे ने सबसे पहले 1838 ई. में समाजशास्त्र (sociology) शब्द का प्रयोग किया। मैकाइवर और पेज ने इसकी परिभाषा देते हुए इसे सामाजिक संबंधों का जाल बताया अर्थात "समाजशास्त्र अनिवार्य रूप से, समाज में स्थित मनुष्य का वैज्ञानिक, वस्तुगत अध्ययन है -- सामाजिक संस्थाओं और सामाजिक प्रक्रियाओं का अध्ययन है।"3

कुछ प्रमुख समाजशास्त्रियों ने इसकी परिभाषा अलग-अलग दी है, जिसकी चर्चा मैंने विस्तार से शोध प्रबंध में की है।

वस्तुत: देखा जाय तो साहित्यिक रचना और उसकी समझ कभी भी अपने सामाजिक संदर्भ से अछूती नहीं रही है। पर आधुनिक युग के साहित्य पर सामाजिक संदर्भ और राजनीतिक परिवेश का जितना ज्यादा प्रभाव पड़ा है, उतना इसके पहले कभी नहीं पड़ा। आज का साहित्य सौंदर्य और प्रेम की एकांत साधना से काफी ऊपर उठ चुका है। वह समाज की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियों से बहुत ज्यादा प्रभावित है। साहित्य के समाजशास्त्र की एक अन्य विशेषता यह भी है कि लेखक की सामाजिक स्थिति का प्रभाव उनकी रचनाओं में विभिन्न संबंधों के रूप में लक्षित किया जा सकता है।

किसी भी रचना के लिए व्यापक पाठक वर्ग तैयार करना और पाठक की दिलचस्पी उस रचना के प्रति बनाये रखना, यह हिंदी आलोचना के सामने आज एक बड़ी चुनौती है और डॉ. मैनेजर पांडेय इसका समाधान साहित्य के समाजशास्त्रीय पद्धति में देखते हैं। उनके अनुसार, "साहित्य का समाजशास्त्र व्यापक सामाजिक प्रक्रिया के भीतर क्रियाशील संपूर्ण साहित्य प्रक्रिया की विभिन्न गतियों और परिणतियों की व्याख्या करते हुए साहित्य के वास्तविक सामाजिक स्वरूप की पहचान कराता है और उसमें साधारण पाठकों की दिलचस्पी जगाता है। इस तरह वह रचना और आलोचना दोनों की सामाजिक सार्थकता बढ़ाता है।"[4] आज आलोचना जो बौद्धिक वाग्विलास का केंद्र बना हुआ है, मैनेजर पांडेय इसे साहित्य के लिए गंभीर चुनौती मानते हैं। उनका स्पष्ट मानना है कि साहित्य की

सार्थकता उसकी सामाजिकता को उजागर करने में है। ऐसे में 'साहित्य का समाजशास्त्र' आलोचना की सार्थकता सामाजिक सार्थकता की रक्षा का एक माध्यम बन सकता है।

साहित्य का आलोचक, आलोचना को एक निश्चित पारंपरिक रहस्यमय, बिंब-विधान, लाक्षणिकता, लय, चरित्रांकन, कथानक की द्वंद्वात्मकता की दृष्टि से देखता है। वह किसी नये विचार को संदिग्धता की दृष्टि से देखता है और बिना विचार-विश्लेषण किये ही उसे खारिज कर देता है। ऐसे ही कुछ आलोचक 'साहित्य के समाजशास्त्र' को भी पारंपरिक आलोचना के विरुद्ध एक साजिश करार देते हैं।

साहित्य का समाजशास्त्र किसी रचना का केवल यूँ ही व्याख्या नहीं करता है बल्कि वह रचना की व्याख्या उसके सामाजिक अस्तित्व और सामाजिक संदर्भ के परिप्रेक्ष्य में करता है। अर्थात वह रचना किस सामाजिक संरचना और साहित्यिक गतिविधियों के बीच लिखी गई? उसके पाठक कौन हैं? पाठक तक रचना की पहुँच के लिए प्रकाशक और वितरण की क्या व्यवस्था है? और सबसे बड़ी बात, रचना के ऊपर अच्छे या बुरे के रूप में पाठक की प्रतिक्रिया। इन सारी कसौटियों पर कसकर कोई रचना साहित्य बनती है और रचना को साहित्य बनाने वाली इस प्रक्रिया का विश्लेषण केवल साहित्य के समाजशास्त्र में होता है, किसी दूसरी आलोचना पद्धति में नहीं।

फिर भी जो लोग दर्शन, मनोविज्ञान, इतिहास और भाषाविज्ञान की दृष्टि से साहित्य के विश्लेषण का समर्थन करते हैं। वे भी साहित्य के समाजशास्त्रीय व्याख्या का विरोध करते हैं और जो थोड़े बहुत लोग इसका समर्थन करते हैं उनके व्याख्या की विश्वसनीयता भी संदिग्ध है। इसीलिए कुछ आलोचक साहित्य के विश्लेषण की एक निश्चित दृष्टि विकसित कर इसकी विश्वसनीयता बढ़ाने की बात करते हैं। समाजशास्त्रीय आलोचना सुनिश्चित दृष्टि पर जोर देती है और साथ ही साथ कट्टरता का विरोध भी करती है। अर्थात साहित्य का समाजशास्त्र अपनी दृष्टि के साथ-साथ साहित्य को दूसरी दृष्टियों से भी जाँचने-परखने में तत्पर है। वह साहित्य के सभी रूपों और पक्षों की समग्रता पर जोर देता है। साहित्य के तीन पक्ष लेखक, रचना और पाठक हैं।

साहित्य के समाजशास्त्रीय विश्लेषण में इन तीनों में से किसी एक पक्ष की उपस्थिति अवश्य रहती है। कभी-कभी एक साथ इन तीनों पक्षों का या इनके आपसी संबंधों का भी विश्लेषण होता है अर्थात इसमें एक साथ कलात्मक और लोकप्रिय साहित्य के सामाजिक संदर्भों और आवश्यकताओं का वर्णन होता है। मैनेजर पांडेय के अनुसार, "केवल साहित्य के समाजशास्त्र में ही साहित्य-प्रक्रिया के अनुभवों और तथ्यों का व्यावहारिक विवेचन होता है, जिसमें साहित्य के लेखन, प्रकाशन, वितरण और उपभोग की पूरी व्यवस्था की भूमिका स्पष्ट होती है। इससे एक ओर साहित्य चर्चा हवाई होने से बचती है तो दूसरी ओर साहित्य के इतिहास लेखन में भी मदद मिलती है।"[5] अत: अब साहित्य को सिर्फ आंतरिक नहीं बल्कि इसे बाह्य दुनिया के परिप्रेक्ष्य में भी समझने की आवश्यकता है।

दूसरा अध्याय: संजीव: परिवार, परिवेश, प्रकृति एवं रचना संसार में उनके जीवन परिचय, शिक्षा, विवाह, नौकरी, परिवार, सामाजिक वातावरण, जीवन संघर्ष एवं साहित्यकार बनने की प्रेरणा पर प्रकाश डाला गया है। ट्यूशन का मकड़जाल, गैर-बराबरी का वातावरण आदि पक्षों का विवेचन किया गया है। जीवन मूल्य, नारी सम्मान जिंदा दिली दोस्ती, जिज्ञासु प्रवृत्ति और विकसित दृष्टिकोण इत्यादि इनके व्यक्तित्व की विशेषता रही है जिस पर विस्तार से चर्चा की गई है। आदर्शवाद, सर्वधर्म समभाव आदि सभी विषयों पर इस अध्याय में समग्रता से विचार किया गया है।

किसी भी रचनाकार के व्यक्तित्व का अध्ययन उसकी रचनाओं के अध्ययन में सहायक सिद्ध होता है। इसलिए कथाकार के समग्र कृतित्व का निष्पक्ष मूल्यांकन के लिए उनके व्यक्तित्व का अध्ययन अनुसंधान के लिए आवश्यक है। संजीव की रचनाओं को समझने से पूर्व उनके विलक्षण एवं बहुआयामी व्यक्तित्व पर प्रकाश डालना आवश्यक है। संजीव ने स्वयं अपने जीवन और लेखन के बारे में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जो कुछ लिखा है या अपने मित्रों एवं आलोचकों से बातचीत के दौरान जो कुछ बताया है, वह सागर में मोती के समान है। 'मेरी यात्रा', 'मैं और मेरा समय', 'मैं क्यों लिखता हूँ', 'मेरी रचना प्रक्रिया' और कुछ पत्रिकाओं में छपी उनके मित्रों एवं रचनाकारों जैसे -गौतम सन्याल, नरेन, रविशंकर सिंह आदि से बातचीत से उनके व्यक्तित्व पर प्रकाश पड़ता है। देखा जाय तो कलाकार का व्यक्तित्व उसकी कला है, अपनी कला से उसका व्यक्तित्व पृथक नहीं हो सकता है -- "कलाकार का व्यक्तित्व, उसका परिचय, उसका विश्वास और उसकी प्रतिबद्धता सभी कुछ उसकी कला होती है। जो कुछ वहाँ नहीं है, उसका महत्व और मूल्य क्या और क्यों हो?"[6]

कथाकार संजीव का जन्म उत्तर प्रदेश के सुल्तानपुर जिले के बांगरकला गाँव में 7 जुलाई 1947 (हेडमास्टर द्वारा आविष्कृत) को एक गरीब परिवार में हुआ। उनका बचपन अत्यंत विपन्नता में नाक-चुआता, मक्खियों की भिनभिनाहट, धूल-गंदगी में डोलता, भैंस की पीठ पर चरगाहों की सैर करते बीता। वृहत्त परिवार और सीमित संसाधन के बीच जातिगत सडांध से बस्साता, सामंती शोषण से उफनता एवं आर्थिक विषमता से लबलबाता ग्रामीण समाज को दारिद्रय से भरा इनका परिवार अधिक दिनों तक सहन नहीं कर पाया और जीविका की तलाश में घर के पुरुष सदस्य गाँव छोड़ने के लिए बाध्य हुए। अपने परिवार के गाँव छोड़ने की पीड़ा को उन्होंने 'पिशाच' नामक कहानी में व्यक्त किया है। इनकी शिक्षा-दीक्षा पश्चिम बंगाल के कोयलांचल वाले क्षेत्र कुल्टी में हुई। इस तरह संजीव का पारिवारिक परिवेश एक तरफ ग्रामीण जनसंस्कृति को समेटे हुए है तो दूसरी तरफ महानगरीय आपाधापी को। उनकी रचनाओं में ग्रामीण संस्कृति के साथ-साथ कस्बाई जीवन के रंग भी ठेठ और जीवंत रूप में मिलते हैं, फिर चाहे वह 'जंगल जहाँ शुरू होता है' और 'सूत्रधार' हो या 'सावधान! नीचे आग है' तथा 'रह गई दिशाएँ इसी पार'।

लेखक का कार्य आसान नहीं है। उसे गहन आत्मनिरीक्षण की प्रक्रिया से गुजरना होता है, अपने भीतर और बाहर की दुनिया से अपने को एकसार करना होता है, अनुभव और ज्ञान की एक

वृहत्तर दुनिया अपने भीतर बनानी होती है। अपने समकालीन जटिलताओं के साथ चिंरतन आँख मिचौली खेलनी होती है। तब जाकर शताधिक कहानियों और दस से अधिक उपन्यास का सृजन होता है। परंतु इतनी रचना करने के पश्चात भी कथाकार की रचना-लिप्सा कुंद नहीं हुई है। असंख्य किरदारों को सृजित करने के बाद भी उनके भीतर कुछ न कर पाने की कचोट है।

संजीव वैचारिक दृष्टिकोण से मार्क्सवादी हैं। समझदारी विकसित होने के शुरुआती दिनों से ही वे मार्क्सवादियों द्वारा चलाये जा रहे समाजवाद, आर्थिक समानता, सामाजिक-बराबरी की भावना से प्रेरित हुए और उसे अपनी रचनाओं का केंद्रीय भाव बनाया। संजीव विज्ञान के छात्र रहे हैं और नक्सलवादी आंदोलन से प्रभावित भी, जिसके कारण इनकी वैचारिकता में तार्किकता और क्रांतिकारी आवेग दोनों ही देखा जा सकता है। परंपरा में इन्हें धार्मिक अंधविश्वास, तंत्र-मंत्र और अंधश्रद्धा मिला था, जिसके चक्कर में जीवन के प्रारंभिक दिनों के कुछ समय व्यर्थ ही नष्ट हो गए। पर आज वे प्रत्येक चीज को अपनी वैचारिक दृष्टिकोण की कसौटी पर कसते हैं --"जिन्होंने सवाल किये "रामायण' क्या है, महाभारत क्या है, गीता क्या है, पुराण क्या है, कुरान और बाइबिल क्या है, इतिहास क्या है, सभ्यता क्या है, संस्कृति क्या है, दुनिया और इसकी कारक शक्तियाँ क्या हैं! जो सोच कर बैठे हो वही सच है या उसके अलावा कुछ है? फिर से देखो, पढ़ो और सोचो, सच क्या है -- यह संरचनात्मक पदार्थ और ऊर्जा की हकीकतें तुम्हारी अपनी और सामाजिक, वैश्विक हकीकतें सभ्यता के नाम पर की गई असभ्य चालाकियाँ, जिसे न जानने के अज्ञानता में सत्य, शिव और सौंदर्य के गलत मिथक गढ़े गए हैं, विकास की गलत व्याख्याएँ दी गई हैं? मुट्ठी भर मक्कार लोग अपने स्वार्थ के लिए दुनिया की बृहत्तर आबादी को वंचित करते हुए अपनी वैष्णवी मुस्कानों से हमें भरमाते रहे हैं। इन मुस्कानों की हकीकत क्या है?"[7] अपने इस विकसित दृष्टिकोण का श्रेय वे अपने शिक्षकों, मित्रों, बड़े भाई और 'दिनमान' पत्रिका को देते हैं। संजीव के आदर्श पुरुष हैं भगत सिंह और भगत सिंह ने लिखा था -- "इसे आँख मूँदकर न पढ़े। यह न समझे कि जो इसमें लिखा है वह सही है। इसे पढ़ो, इसकी आलोचना करो और इसकी मदद से अपने विचार बनाने की कोशिश करो।"[8] भगत सिंह के इस आलोचनात्मक प्रस्ताव ने भी संजीव के वैचारिक दृष्टिकोण को सशक्त बनाने में काफी मदद की।
संजीव जमीन से जुड़े कथाकार हैं। उनका सारा रचनाकर्म सिर्फ और सिर्फ जनता को समर्पित है। वे

अपने अंचल के लोगों से अपनी पहचान छुपा कर मिलते रहते हैं और उनके रहन-सहन और शैली के आधार पर अपने भीतर-भीतर नए किरदार गढ़ते रहते हैं और फिर उसे अपने विचारों की चासनी में चास कर आदर्शों की कसौटी पर कसकर गढ़े गए पात्रों को लेकर एक रचना के रूप में पाठक को परोसेंगे और जब उनका यह रचनागत आदर्शवाद वास्तविक जीवन में खंडित होता है तो रचनाकार के हृदय से एक आह निकलती है, जिसे हम 1998 में रानीगंज में आयोजित 'संजीव लोक सम्मान समारोह' में कहे गये उनके वक्तव्य से समझ सकते हैं --"आरोहण' का भूपसिंह, 'त्रिवेणी का तड़बन्ना' का त्रिबेनी, 'सागर सीमांत' की नसीबन, 'अपराध' की संघमित्रा, सचिन, सिद्धार्थ, 'मैं चोर हूँ मुझ

पर थूको' का हबीब और 'प्रेरणाश्रोत' की जंगली बहू से आँखे चुराने वाला लेखन में मैं ही हूँ।''[9]
संजीव के दस उपन्यास और ग्यारह कहानी संग्रह हैं। उनकी कहानियों को समग्र रूप में तीन खंडों में प्रकाशित किया गया है।

तीसरा अध्याय-**संजीव के उपन्यासों की कथा वस्तु का समाजशास्त्रीय विश्लेषण** के अंतर्गत एक उपन्यासकार के रूप में संजीव का परिचय कराया गया है तथा उनके उपन्यासों अहेर, सर्कस, सावधान! नीचे आग है, धार, पाँव तले की दूब, जंगल जहाँ शुरू होता है, सूत्रधार, रह गई दिशाएँ इसी पार, तथा फाँस के कथावस्तु का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से विवेचन एवं विश्लेषण किया गया है।

उपन्यास के उदय को पूंजीवादी औद्योगिक समाज में मध्यवर्ग की आशाओं-आकांक्षाओं और पीड़ाओं से जोड़कर देखा जाता है। वैसे तो जिज्ञासु प्रवृत्ति के होने के नाते संजीव अपनी प्रत्येक रचना के लिए शोध से गुजरते हैं। लेकिन उनकी पहचान एक उपन्यासकार से ज्यादा एक कहानीकार के रूप में है। उनके उपन्यास प्रेमचंद और रेणु की विरासत को निष्ठा के साथ आगे बढ़ाते हैं।

मूलत: उन्होंने अपने उपन्यासों में अनछुए संदर्भों जैसे -- कोयलांचल में मजदूरों की समस्या, ठेकेदारी, माफिया तंत्र, सर्कस के कलाकारों की अंतर्व्यथा एवं त्रासदी तथा विज्ञान एवं वैज्ञानिकों का दोहन, लोक-कलाकारों की जीवनी को छुआ है। उनके उपन्यासों के कथ्य पिछड़े अंचल के आदिवासियों, दलितों के पीड़ित और अभिशप्त जीवन का चित्रण ही नहीं करते बल्कि इन उपेक्षित लोगों के द्वारा विरोध का स्वर भी मुखर करते हैं। उपन्यास लिखने के कारण के रूप में वे लंबी होती कहानियों के कलेवर को मानते हैं। प्रेरणास्रोत के रूप में प्रेमचंद, विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक', वृंदावनलाल वर्मा और जासूसी तथा बंगला के कुछ उपन्यासों को मानते हैं।

उपन्यास कला के क्षेत्र में भी संजीव के उपन्यास अपना एक अलग महत्व रखते हैं। विविध भाषाओं, शिल्प रचना और संवेदना को रचने में उनकी कड़ी मेहनत दिखती है। उनके उपन्यासों में किसी अंचल के परिवेश, जनजातीय जीवन, व्यवस्थागत विसंगतियाँ, चौतरफा शोषण, लोकसंस्कृति आदि की झलक स्पष्टत: देखी जा सकती है।

संजीव अपने कथा में किसी व्यक्ति की बात न करके पूरे अंचल की बात करते हैं, उनके कथा-साहित्य का भूगोल भी व्यापक है। 'किशनगढ़ के अहेरी' उनका प्रथम उपन्यास है। स्वतंत्रता के पश्चात भी नव अंग्रेजों के शोषण और चक्रव्यूह में पिसकर किशनगढ़ एक पिछड़ा और अभिशप्त इलाका है, जहाँ से विकास, चेतना और शिक्षा कोसो दूर है। किशनगढ़ प्रतीक है भारतवर्ष के प्रत्येक पिछड़े, पीड़ित और शोषित अंचल का।

चूँकि संजीव के जीवन का अधिकांशत: समय कोयलांचल और औद्योगिक कस्बा कुल्टी में बीता इसलिए इस परिवेश का वर्णन 'सावधान! नीचे आग है', 'धार' और 'पाँव तले की दूब' उपन्यासों में

देखने को मिलती है। 'सावधान! नीचे आग है' उपन्यास में कथाकार धुँआसे से भरे शहर झरिया के चंदनपुर में स्थित एशिया के आधुनिकतम खदान के बाहरी और भीतरी परिवेश का चित्र खींचता है। 'धार' उपन्यास में थारू आदिवासियों का शोषित, अभिशप्त, विस्थापित जीवन, जनखदान में उनकी भागीदारी, तेजाब फैक्ट्री के जहर में पल-पल घुलता उनके जीवन के माध्यम से बिहार के संथाल परगना का परिवेश उकेरा गया है। 'पाँव तले की दूब' उपन्यासिका के माध्यम से पंचपहाड़, झारखंड आंदोलन, झारखंड की खनिज संपदा कोयला, लोहा, जिंक, एल्यूमीनियम, यहाँ के आदिवासियों की आर्थिक दूर्दशा, अवरोध, झड़प, गिरफ्तारियाँ और रिहाई का परिवेश अंकित किया गया है।

'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास में नेपाल से सटे बिहार के समीपवर्ती पश्चिम चंपारण क्षेत्र के जंगल, पहाड़, खेत, नदियाँ, कछार का मूर्त रूप उजागर हुआ है। यहाँ डाकू समस्या के मूल में यहाँ के घने बीहड़, दुर्गम जंगल और जंगलों के बीच से बहती हुई नदियाँ हैं। जंगल जहाँ इन अपराधियों को शरण देती है, तो नदी इन अपराधियों को जन्म।

'सूत्रधार' उपन्यास में लोक-कलाकार भिखारी ठाकुर के जीवनी के माध्यम से बिहार की लोकसंस्कृति एवं लोकजीवन का यथार्थ चित्र अंकित हुआ है। उनके लोकसंगीत विदेसिया, बेटी वियोग, पिया निसइलन इत्यादि में बिहार का परिवेश ही घुल-मिलकर उभरा है। 'रह गईं दिशाएँ इसी पार' में पश्चिम बंगाल के दक्षिण चौबीस परगना में स्थित सुंदरवन की सुंदरता का वर्णन हुआ है। यहाँ का परिवेश दलदली किचड़युक्त काली मिट्टी एवं गंदे पानी के नदियों से युक्त भू-खंड के कठोर जीवन संघर्ष से निर्मित हुआ है।

अत: संजीव के उपन्यासों का परिवेश सजीव और यथार्थ से भरा है। उनके प्रत्येक उपन्यास में उस क्षेत्र विशेष का समाज, रहन-सहन, बोलचाल, लोक-संस्कृति, धर्म, राजनीति इत्यादि का वर्णन मानवता के पक्ष में हुआ है।

'किशनगढ़ के अहेरी', इस उपन्यास में संजीव ने वर्गभेद में बँटी हुई ग्रामीण समाज में निम्नवर्ग की दुर्दशा, उनका जीवन संघर्ष, सामंतवादी शोषण का क्रूर रूप, नारी शोषण, धार्मिक आडंबर का नग्न रूप प्रस्तुत किया है। आर्थिक विषमता, जातिभेद और पूंजीपतियों की कुटिलता ने देश के विकास को कुंद कर दिया है। आजादी के तैंतीस वर्ष बाद भी आम जनता के प्रति शोषण, परंपरा, धूर्तता, सामंती हवस में कोई कमी नहीं आई, शोषक का सिर्फ चोला बदला, अंग्रेजों की जगह नवअंग्रेजों ने ले लिया।

इसलिए पूरे उपन्यास में लेखक शोषित-पीड़ित जनता के पक्ष में खड़ा दिखता है। लेखक ने बचपन में अपने गाँव में अपने परिवार के साथ जिस सामंती शोषण और जातिगत घृणा को देखा-भोगा था वह इस उपन्यास में प्रतिफलित हुआ है। आजादी से जो सुख-शांति की अपेक्षा थी उससे आम जनता का मोहभंग हो गया है तभी तो कथाकार भगत सिंह की आवाज में प्रश्न उठाता है कि

आजादी किसके लिए? कैसी आजादी? उनके लिए जो महलों में रहते हैं या उनके लिए जो दोहित और शोषित हैं। इस प्रकार संजीव देश का यथार्थ सामने रखते हैं जहाँ धूर्त्त और मक्कार लोग गद्दी हथियाकर गरीब, असहाय जनता का शोषण कर रहे हैं। लेखक ने इन शोषक वर्ग को नपुंसक कहा है क्योंकि उनमें उच्च प्रशासनिक अधिकारियों और राजनेताओं से कुछ हासिल करने का माद्दा ही नहीं है। वह तो सिर्फ गरीब जनता के थाली से रोटी झपटना जानता है।

'सर्कस' -1984 में भारतीय सर्कस के सौ वर्ष पूर्ण हुए और इसी वर्ष संजीव का उपन्यास 'सर्कस' प्रकाशित हुआ। परंतु किसी भी दृष्टिकोण से यह उपन्यास व्यावसायिक नहीं है बल्कि इसमें सर्कस की बाह्य चमक-दमक के साथ सर्कस की अंतरिम दुनिया, सर्कस कलाकारों की पीड़ा, शोषण, संघर्ष, सर्कस मालिकों की कुटिलता, धर्म, मृत्यु, काम, भय, जोखिम और आकर्षण का जिस प्रकार वर्णन किया गया है, वह अपने आप में इसे एक बेजोड़ उपन्यास सिद्ध करता है।

साधारणत: लोग सर्कस के बाह्य एवं चकाचौंध भरी दुनिया से आकर्षित होते हैं परंतु वे सर्कस के भीतर की जलालत भरी जिंदगी को नहीं जानते। वे नहीं जानते कि यहाँ कलाकारों को कठपुतलियों की तरह नचाया जाता है जिसकी डोर सर्कस मालिकों के हाथों में होती है। लोग उसके ग्लैमर, लाइट, साउंड को देखते हैं, परंतु उस माइक की साउंड में दबती और घुटती हुई कलाकारों की सिसकियों को नहीं सुन पाते। संजीव ने पहली बार इस उपन्यास के माध्यम से जब इस अनछुए पहलुओं को छुआ तो वह खुलता ही चला गया और उसमें न जाने कितनी रीता, कामिनी, चंद्रा जैसी लड़कियाँ पिसती ही चली गई। सर्कस में उपस्थित बाघ, शेर भी कभी-कभार एकाध कलाकार को चट कर जाते हैं, परंतु नियोगी जैसे सर्कस मालिकों के जबड़े में तो न जाने कितनी रीता जैसी कलाकार चट होने के लिए फँसी रहती है। कई कलाकार स्टंट में घायल होकर अपाहिज बनकर दूसरे के आसरे पर जीने के लिए बाध्य हैं। कलाकारों को एक बाड़े में बंद कैदी जैसा जीवन बिताना पड़ता है, बाह्य जगत के यथार्थ से उनका साक्षात्कार ही नहीं हो पाता है। कई कलाकारों का तो जन्म और शादी-ब्याह भी सर्कस के अंदर ही होता है। उपन्यास में भवुकता के इतने क्षण हैं कि पाठक स्वयं भावुक हुए बिना नहीं रह सकता। परंतु संजीव सजग हैं, उन्होंने भावुकता का प्रसंग तो रचा है परंतु इस भावुकता में वे स्वयं बहे नहीं हैं बल्कि शोषण तंत्र के खिलाफ वे मुखर दिखते हैं जो इस उपन्यास की प्रासंगिकता बनकर उभरी है।

'धार' उपन्यास 'सावधान! नीचे आग है' की अगली कड़ी प्रतीत होती है क्योंकि 'सावधान! नीचे आग है' में उठाये गए समस्याओं को यह उपन्यास समाधान की ओर ले जाता है। इस उपन्यास की नायिका मैना एक आदिवासी महिला है जो परंपरागत शोषण, भ्रष्टाचार, उत्पीड़न और अत्याचार के विरुद्ध आवाज बुलंद करती है। वहाँ के वातावरण और जल में विष घोलने वाली तेजाब फैक्ट्री का विरोध करती हुई वह जेल जाती है, फैक्ट्री का समर्थन करने वाले अपने पिता और पति को त्यागती है। पर आदिवासियों के उत्थान के लिए साहस के साथ डटी रहती है। इसी क्रम में वह अविनाश शर्मा

के साथ मिलकर जनखदान का निर्माण करवाती है। इस आदिवासी सहकारिता के माध्यम से वहाँ के आदिवासियों में एक नये अधिकारबोध और चेतना का संचार होता है।

'पाँव तले की दूब' उपन्यासिका के केंद्र में झारखंड आंदोलन है। औद्योगिकरण ने आदिवासियों को अरण्यमुखी संस्कृति से विस्थापित कर दिया है। जो जंगल कभी उनकी जीविका के साधन हुआ करते थे आज वन विभाग के नाम पर उन पर ठकेदारों का कब्जा है। सरकारी अधिकारियों और ठेकेदारों की मिलीभगत के कारण अवैध रूप से ट्रक के ट्रक जंगल काट कर बेच दिया जा रहा है जबकि जंगलों के मूल निवासियों को आज जंगल से एक दतुअन तक तोड़ने का अधिकार नहीं है।

कोयलांचल के पश्चात संजीव पश्चिमी चंपारण के जंगलों में प्रवेश करते हैं। 'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास में डाकू समस्या के मूल में वहाँ की भौगोलिक परिस्थितियाँ, आर्थिक विषमताएँ, अशिक्षा, बेरोजगारी, सामंती व्यवस्था, अन्याय, अत्याचार, हिंसा, अपराध, उत्पीड़न, अवसरवादिता, अराजकता, भ्रष्टाचार इत्यादि है। यहाँ जनतंत्र के नाम पर जंगलतंत्र चलता है और डाकू जंगल सरकार के नाम से समानांतर सरकारें चलाते हैं।

'लोककला' और 'लोक-संस्कृति' से उन्हें अगाध प्रेम है जिसका प्रतिफलन 'सूत्रधार' उपन्यास में हुआ है। उपन्यास के नायक शोषित, उपेक्षित भिखारी ठाकुर हैं। उपन्यास में व्याप्त जातीय संकीर्णता के विरुद्ध नाट्य सम्राट भिखारी ठाकुर में काफी छटपटाहट है। बचपन से ही वे स्वच्छंद विचारधारा के रहे तभी तो स्कूल की चाहरदीवारी और अपमान, उपेक्षा के जीवन के बजाय दियारे में गोरू चरवाहे की दुनिया उन्हें जानी-पहचानी लगी। क्योंकि यहाँ उन्हें गुरुजी की मुफ्त की टहलुआई करने से मुक्ति मिली। यहीं खपटे की ताल पर शुरू हुआ लोक-संगीत उन्हें भिखरिया से 'मालिक जी' तक का सफर तय कराता है।

समय के साथ मनुष्य के रुचि में भी परिवर्तन हुआ है। विज्ञान, काप्यूटर और इंटरनेट आज मनुष्य की रुचि के केंद्र बिंदु हैं। 'रह गईं दिशाएँ इसी पार' एक वैज्ञानिक उपन्यास है जिसमें पूंजीपति वर्ग विज्ञान और वैज्ञानिकों का दोहन अपने हित में कर रहा है। अमेरिका की पूंजी ने न जाने कितने भारतीय वैज्ञानिकों को अपने हरम में सजा रखा है। संजीव ने इस उपन्यास में जीवन-मृत्यु, शोध-अमरत्व, टेस्ट-ट्यूब बेबी, ईश्वर, सेक्स, अंग-प्रत्यार्पण, हार्मोन-ट्रीटमेंट, क्लोन-मैकिंग इत्यादि की टोह ली है। अथाह संपत्ति का मालिक मि. विस्नू बिजारिया अपने हित के लिए अपने नर्सिंग होम और अनाथ आश्रम में डाक्टरों और अनाथ बच्चों को पाल रखा है। ये पूंजीपति अपने को युवा बनाये रखने के लिए अपने इनएक्टिव अंगों का ट्रांसप्लांट करवाते हैं और इस कार्य के लिए वे अपने अनाथलाय के बच्चों को चारा के रूप में उपयेाग करते हैं। अपने को चिर युवा बनाये रखने का उपाय वह बोटानिस्ट विशाल से पूछता है। उपन्यास में ह्यूमन क्लोनिंग के माध्यम से मनुष्य के बुढ़ापे को रोकने की कोशिश की जाती है।

संजीव ने अपने उपन्यासों के माध्यम से हमेशा अनछुए पहलुओं को छुआ है। उनके उपन्यास के कथ्य भौतिक और यथार्थवादी हैं। उन्होंने अपने उपन्यास का नायक व्यक्ति विशेष के स्थान पर अंचल को बनाया है। वे पूरे अंचल की पीड़ा बतलाते हैं। कोयलांचल, आदिवासी जीवन, लोककला एवं लोकसंस्कृति, विज्ञान और वैज्ञानिकों का दोहन, भारतीय किसान इनके उपन्यासों के प्रमुख आधार रहे हैं।

चौथा अध्याय: **'संजीव की कहानियों की कथावस्तु का समाजशास्त्रीय विश्लेषण'** के अंतर्गत समकालीन कहानी में संजीव का स्थान तथा उनकी गयारहों कहानी संग्रह तीस साल का सफरनामा,आप यहां हैं, भूमिका और अन्य कहानियाँ, दुनिया की सबसे हसीन औरत, प्रेरणास्रोत और अन्य कहानियाँ, प्रेतमुक्ति, ब्लैक होल, डायन और कहानियाँ, खोज, गति का पहला सिद्धांत, गुफा का आदमी, झूठी है तेतरी दादी से प्रमुख कहानियों की कथावस्तु का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से विवेचन एवं विश्लेषण किया गया है।

संजीव ने अपने आसपास के परिवेश में जो कुछ भी देखा-भोगा उससे उनके अंदर एक अपनी विचारधारा तैयार हुई। उनकी यह वैचारिक दृष्टि उनके कथा-साहित्य में विभिन्न पात्रों या चरित्रों के माध्यम से व्यक्त हुई है। अपराध, ऑपरेशन जोनाकी, शिनाख्त, तिरबेनी का तड़बन्ना, भूखे रीछ, पूत-पूत! पूत-पूत!! गोलोक, टीस, इत्यादि उनकी आइडियोलॉजी संबंधी कहानियाँ हैं। उनकी विचारधारा मार्क्सवादी विचारधारा से मेल खाती है। उनकी कहानियों में वर्गीय चेतना और संघर्ष सहर्ष चिन्हित किये जा सकते हैं। 1967 में पश्चिम बंगाल में नक्सलबाड़ी आंदोलन का जन्म होता है। ये नक्सली भ्रष्ट न्याय व्यवस्था, सामूहिक शोषण, पुलिस तंत्र और धोखेबाज नेताओं के खिलाफ, व्यवस्था में परिवर्तन के लिए जुझारू रूप से आंदोलन कर रहे थे। ऐसी स्थिति में कथाकार का हृदय नक्सलियों के प्रति संवेदनशील रहा। आजादी के तीस वर्ष बाद छठवीं लोकसभा के गठन के पश्चात भी जब आम जनता के प्रति सरकार के रवैये में किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं आया तो गरीब, शोषित और पीड़ित जनता नक्सलबाड़ी आंदोलन के तरफ मुड़ने लगी। कथाकार संजीव ने तो इन आंदोलनकारी नक्सलियों को अपराधी मानने से ही इन्कार कर दिया और उन्हें बुद्धिजीवी करार दिया।

अत: संजीव ने खुलकर कहानी में सत्ता और व्यवस्था में बैठे लोगों को असली अपराधी करार दिया है न कि सचिन और संघमित्रा जैसे बुद्धीजीवी नवयुवकों को। वे सत्ता पर काबिज अवसरवादी, स्वार्थलोलुप-नेता, प्रशासनिक-अधिकारी और पूंजीवादी-व्यवस्था का पोल खोलते हैं और गरीब मजदूरों, किसानों को अपने हितों की रक्षा के लिए एकजुट होकर शांतिपूर्ण आंदोलन की प्रेरणा भी देते हैं।

'शिनाख्त' कहानी में कॉलेज के छात्रों को नक्सली होने के संदेह में पुलिस छात्रावास का तलासी लेती है। असलम जहानाबाद का है। पुलिस इसी को उसके नक्सली होने का आधार मान लेती है। धूमिल के काव्य संग्रह 'संसद से सड़क तक' के मिलने पर भी पुलिस उन्हें नक्सली होने के संदेह

से देखती है। जाति और वर्ण के आधार पर यहाँ छात्रों की पहचान की जाती है। पुलिस यहाँ असली अपराधी सत्यनारायण सिंह को स्वयं बचाकर अपराध को बढ़ावा देती है और बेकसूर छात्रों को नक्सली समझकर उन्हें अपराधी करार देती है।

'ऑपरेशन जोनाकी' में जोनाकी गाँव में सत्येन नामक युवक आदिवासियों को संगठित कर उन्हें उनके अधिकारों के प्रति जागृत करता है। अब आदिवासी जोतदार, पुलिस और वन-विभाग के भ्रष्टाचार का विरोध करते हैं। इलाके के प्रभुता संपन्न लोग और पुलिस उन्हें नक्सलाइट घोषित कर उन्हें कुचलने का कार्यक्रम बनाती है। उनकी कहानियों में मुक्ति के लिए संघर्ष है, व्यवस्था से टकराव है।

'तीस साल का सफरनामा' कहानी में सूरजा किसान से मजदूर बन गया और जब सूरजा द्वारा अपने उपर हो रहे शोषण का विरोध किया गया तो उसे नक्सलाइट करार दे दिया गया। संजीव की कहानियों में नक्सलबाड़ी आंदोलन के प्रति गहरी निष्ठा दिखती है परंतु 'पूत-पुत! पूत-पूत!!' कहानी में कथाकार के आइडियोलॉजी में एक द्वंद्व की स्थिति है क्योंकि आरंभिक दिनों में उन्हें यह विश्वास था कि अन्याय और शेषण पर टिके इस व्यवस्था में वे आमूल-चूल परिवर्तन ला देंगे परंतु आगे चलकर इन आंदोलनों में स्खलन और विपर्यय दिखने लगे।

इसके अलावा 'तिरबेनी का तड़बन्ना', 'खोज', 'भूखे रीछ', 'कंफेशन' और 'दुश्मन' इत्यादि विचारधारा से प्रेरित कहानियाँ हैं। इसमें पार्टी में वर्ग विभाजन, नक्सलवाद के झटके, गरीब मजदूरों के शोषण, अफसरों की अनैतिकता, क्रांतिकारी महिलाओं के राजनीतिक आर्थिक, शारीरिक और मानसिक शोषण को उजागर किया गया है। ट्रेड यूनियनों में दोमुँहेपन और सत्ता के शिकंजे में फँसे मजदूरों को संगठित करना और संघर्ष के लिए प्रेरित करना ही कथाकार का ध्येय रहा है।

संजीव की कहानियों में नारी पात्रों की भरमार है। जिस नारी को प्रेमचंद ने देवी का सम्मान दिया था, वह आज भी इस पुरुष सत्तात्मक समाज में दोयम दर्जे की जिंदगी जीने को विवश है। उनकी बहुत-सी कहानियों में नारी के साथ यौन-शोषण का चित्रण किया गया है। 'जसी-बहू' कहानी में सितई पंडित जसी बहू के साथ जबरदस्ती करके उसे गर्भवती बना देता है। वह उस बच्चे को जन्म देती है। 'धनुष टंकार' कहानी में मुंशी सुरसती के साथ स्टोर रूप में जबरदस्ती करता है। 'कठपुतली' कहानी में कल्याणी दी सेठ की रखैल है तो 'टीस' कहानी में शिबु की पत्नी मतई के साथ मंदिर का पुजारी अनैतिक संबंध रखता है। 'पुन्नी माटी' कहानी में अर्थाभाव के कारण शिखा रिसेप्शनिस्ट की आड़ में देह-व्यापार करने को बाध्य है। 'आप यहाँ हैं' कहानी में नौकरानी हिंदिया के साथ के. पी. वर्मा व्यभिचार करते हैं। संजीव के यहाँ नारी के प्रति सम्मान और आकर्षण का भाव है, परंतु पुरुष के भोगवादी मानसिकता को भी वह रेखांकित करते हैं। 'सागर सीमान्त' कहानी की नायिका नसीबन ताउम्र समुद्र में खोये अपने पति का इंतजार करती है परंतु जब वह मिलता है तो उनकी दूसरी शादी

और उससे संताने भी हो चुकी होती हैं। 'अंतराल' कहानी की नायिका स्वयं बदचलन का दाग सहती है पर अपने भावी पति के इज्जत पर आंच नहीं आने देती है। दोनों की इच्छा के विरुद्ध दोनों का विवाह अलग-अलग जगहों पर कर दिया जाता है। पर वह एक भारतीय नारी है और अपने प्रथम ब्याहता पति को कभी भूल नहीं पाती हैं। उन दोनों की फिर से मुलाकात एक लंबे अंतराल के बाद एक मेले में होती है जहाँ राजकुमार उसे फिर से भगा ले जाने का प्रस्ताव रखता है, इस पर वह कहती है --"औरत होते तो समझते मेरी मजबूरी। एक पौधे को कितनी बार उखाड़कर रोपियेगा? उसकी भी जड़े होती है कि नहीं?"[10]

इसी प्रकार 'फैसला' कहानी में वकील चौबे तीन तलाक को पुरुष प्रधान समाज द्वारा निर्मित स्त्री शोषण का एक हथकंडा मानते हैं। 'घर चलो दुलारीबाई' के दुलारीबाई!' पर पति की मृत्यु के पश्चात देवर और भसूर की कुदृष्टि है। उसके बच्चे की हत्या कर दी जाती है परंतु वह हार नहीं मानती हैं। न्याय के लिए लड़ती है। संजीव ने इस प्रकार अत्याचार, अनाचार, शोषण के खिलाफ आवाज मुखर करने वाले नारियों को ही दुनिया का सबसे हसीन औरत माना है। यहाँ सौंदर्य के बाह्य पक्ष रूप-रंग की जगह अत्याचार की खिलाफत का जज्बा उसके आंतरिक सौंदर्य का प्रतीक है।

अत: यह कहना गलत न होगा कि नारी को समाज में बराबरी का स्थान न देकर उसका शारीरिक, मानसिक शोषण करना ही शोषक की चालाकी है। अत: आवश्यक है कि नारी के प्रति सम्मान और आंतरिक सहयोग की भावना जागृत करने का, जिससे सामाजिक समरसता बनी रहे।

पाँचवां अध्याय: **'संजीव के कथा-साहित्य में समाजार्थिक चिंतन का स्वरूप'** में चिंतन का अर्थ, उसकी परिभाषा, समाज से उसका संबंध, समस्याओं का समाधान ढूँढ़ने में उसकी भूमिका, विभिन्न सामाजिक एवं आर्थिक समस्याएँ मसलन जाति और वर्ग भेद, अस्पृश्यता, सांमती-पूंजीवादी व्यवस्था, भ्रष्ट न्याय व्यवस्था, नारी संवेदना, निर्धनता, बेरोजगारी की समस्या, अर्थ कमाने की समस्या आदि मुद्दों पर चिंतन मनन किया गया है।

संजीव की कहानियों का भूगोल बड़ा है। सागर से लेकर पहाड़ तक, समतल से लेकर जंगल तक, ग्राम से शहर तक तथा वैज्ञानिक टेक्नोलॉजी से लेकर स्पेश तक फैलता है उनके कथा-विस्तार का क्षेत्र। वे अपनी कहानियों को न सिर्फ वैज्ञानिक धरातल पर परखते हैं बल्कि उसकी यथार्थता के लिये विभिन्न स्थानों का भ्रमण भी करते हैं। इन यात्राओं के दौरान कथाकार की दृष्टि जहाँ तक जाती है वहाँ तक का यथार्थ कहानियों में उभर कर सामने आता है। साधारणत: उनकी नजर अनछुए पहलुओं को ढूँढ लेती है। वे कहानियों में कल्पना का समावेश तो करते हैं परंतु उसकी मूल बुनावट से छेड़छाड़ नहीं करते हैं। उनकी कहानियों में उनका कठोर श्रम दिखता है। वे अपनी प्रत्येक रचना के लिए शोध से गुजरते हैं। इस शोध के दौरान वे बहुत-सी सूचनाएँ और ज्ञान भी अर्जित करते हैं, जिसका प्रयोग वे कहानियों में करते हैं। 'टीस' कहानी को लिखने के लिए सपेरों के गाँव तक गए तथा

'सूत्रधार' उपन्यास लिखने के लिए भिखारी ठाकुर के गाँव कुतुबपुर, छपरा से होते हुए सोनपुर के मेला तक भटकते रहे और सामग्री एकत्रित करते रहे। 'फिल्ड वर्क' के साथ-साथ वे कठिन 'होमवर्क' भी करते हैं। प्राप्त ज्ञान को अनुभव की कसौटी पर कसकर पाठक को परोसते हैं। 'आरोहण' कहानी में ज्ञान की अपेक्षा अनुभव की प्राथमिकता है संजीव की कहानियों में गाँव भय, हताशा और निराशा में डूबा हुआ उभरा है। गाँव के एक छोर पर सूरजा है जो आजादी के इन तीस वर्षों में किसान से मजदूर बन गया तथा दूसरे छोर पर नंबरदार गजराज सिंह है जो किसान से महाजन बन गया। गाँव की गरीबी में लिपटी रंगई बहू की छह वर्षीय पुत्री है जो अपने उल्टी को कटोरे में काछ-काछ कर रख रही है, फिर से खाने के लिए। ग्रामीण भारत में भूख की यह दर्दनाक स्थिति हमारी स्वतंत्रता पर कलंक है। संजीव की कहानियों में शहरी जीवन और मध्यवर्ग का भी खूब चित्रण हुआ है। उन्होंने बाजारवाद, उपभोक्तावाद और पूंजीवाद पर कई कहानियाँ लिखी हैं।

अत: संजीव की कहानियाँ अपने समय की अधिकांश ज्वलंत समस्याओं को उठाती हैं। उसे मानविकी विमर्श के धरातल पर लाती है। वे अपनी कहानियों में जनता की समस्याओं के प्रति चिंतित दिखते हैं। पाठकों के अंदर वैज्ञानिक दृष्टि तथा समाजशास्त्रीय विमर्श का संचार करते हैं।

छठवां अध्याय: '**संजीव के कथा-साहित्य में आँचलिकता बोध**' है। आँचलिकता का अर्थ, आँचलिकता की परिभाषा, आँचलिकता का महत्व, भौगोलिक स्थिति का वर्णन, भारतीय संस्कृति, रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, लोक-संस्कृति, लोकगीत, स्थानिय बोली, रीति-रिवाज, खाप पंचायत, आभूषण, लोककथा, लोक विश्वास, मेला आदि का विवेचन भारतीय समाज के परिप्रेक्ष्य में किया गया है।

प्रकृति, परिवेश या भौगोलिक सीमाओं का वर्णन किसी भी कथा-साहित्य को सजीवता प्रदान करता है। आंचलिक कथा-साहित्य में तो यह लगभग सार्वभौम सत्य है कि किसी निश्चित क्षेत्र विशेष या अंचल विशेष के जीवन सत्य को ही उजागर किया जाता है। 'अंचल' शब्द अंग्रेजी के 'रीजन' शब्द का पर्याय है जिसका अर्थ किसी विशिष्ट भू-भाग से है। कुछ आलोचकों का मानना है कि यह अंचल विशेष गाँव भी हो सकता है, शहर भी। किंतु हिंदी के आंचलिक उपन्यासों की परंपरा को देखते हुए लोग स्वीकार करते हैं कि आँचलिकता का संबंध ग्रामीण जीवन से ही है। लेकिन यह भी सत्य है कि ग्राम-जीवन को केंद्र में रखकर लिखने के बावजूद भी प्रेमचंद के उपन्यास आँचलिक नहीं हैं। दूसरी तरफ नगरों और कस्बों के विशिष्ट जीवन के चित्रण पर आधारित उपन्यास आँचलिक उपन्यास नहीं माने जाते हैं बल्कि कुछ आलोचक तो आँचलिकता में नगरबोध के प्रवेश को ग्रामीण जीवन से सीधा-टकराहट मानते हुए इसे आँचलिकता के प्रभावहीन होने का कारण मानते हैं। इसलिए आंचलिक कथा-साहित्य में समाज या किसी विशेष भू-खंड के जन-जीवन, वातावरण का यथार्थवादी रूप प्रस्तुत करना आवश्यक हो जाता है। यह वर्णन मुख्यत: दर्पण के समान स्पष्ट होना चाहिए जिसमें उस अंचल विशेष के धूल-धूसरित ग्रामीण जीवन की वेदना, दु:ख, दरिद्रता, प्रेम, जीवटता आदि का स्पष्ट चित्रण हो। संजीव के कथा साहित्य में प्रकृति, वातावरण, रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, रस्म-रिवाज, आभूषण,

जाति-पंचाचत, लोक कथा, लोक-संगीत, पर्व-त्योहार, स्थानीय बोली इत्यादि का यथार्थवादी वर्णन मिलता है।

'सावधान ! नीचे आग है' उपन्यास में कथाकार झरिया शहर के गलियों-उपगलियों, जमी भीड़, कोक प्लांट, कोलियारियों के टॉप-गियर, कोयले के स्तूपाकार मलबे और ढूँहों, ट्रकों की कतारों से अँचल विशेष का चित्र उकेरते हुए यह संकेत दे देते हैं कि इन भौगोलिक स्थितियों के अनुरूप ही वहाँ के लोगों का जन-जीवन उपन्यास में चित्रित होगा। 'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास में भी थारू आदिवासियों की त्रासद जिंदगी और डाकू समस्या के मूल में दुर्गम जंगल, गंडक नदी का बाढ़, भूमि सुधार का न होना, ढीला प्रशासन, बेरोजगारी, धर्म और पॉलिटिकल सेल्टर है।

भारतवर्ष व्यापक क्षेत्र में भौगोलिक स्थिति और परिवेश की विविधता को समेटे सबसे प्राचीनतम एवं श्रेष्ठ संस्कृति है। जो 'अतिथि देवो भव।' तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना पर आधारित है। विश्व के अनेक देशों के लोग विविध संस्कृतियों के साथ भारत में आये और यहाँ की संस्कृति में घुल-मिल कर इसे और समृद्ध करते रहे। इस प्रकार किसी अंचल विशेष में स्थित लोगों की संपूर्ण जीवन प्रणाली खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार, दैनिक क्रिया-कलाप इत्यादि को आंचलिक संस्कृति कहा जा सकता है। अंचलों में चलायमन लोकगीत, लोक-नृत्य, लोकभाषा, लोक-संगीत, लोकनाटक, त्योहार इत्यादि लोक-संस्कृति को समृद्ध करते हैं। संजीव के कथा साहित्य में लोक-संस्कृति की भरमार है। अलग-अलग क्षेत्रों के लोगों के रहन-सहन और जीवन शैली में विविधता है। उनकी कहानियाँ क्रमश: 'सागर सीमान्त', 'दुश्मन तथा मरोड़ में मछुआरों, शहरी बस्तियों में रहने वाले गरीब पुरुष-महिलाओं और प्राथमिक विद्यालय के शिक्षक मास्टर दीनानाथ का जीवन अत्यंत दयनीय दिखाया गया है।

संजीव के कथा-साहित्य के अधिकांशत पात्र गरीब, दलित, पीड़ित, शोषित, मजदूर, किसान, आदिवासी इत्यादि हैं। इसलिए इनका खान-पान भी क्षेत्र विशेष और आर्थिक क्षमता के अनुरूप है। इन्हें पिजा, वर्गर, चाइनिज, इटालियन, दूध, दही, घी, मक्खन, कोल्ड्रींक्स नहीं मिलता। इन्हें पेट भरने के लिए जो भी भोजन प्राप्त होता है उसे ईश्वर का आशीर्वाद समझकर ग्रहण करते हैं। 'आरोहण' कहानी में पहाड़ी लोग सिर्फ मक्का खाकर जीने को विवश हैं, तो 'सागर सीमान्त' में मछुआरों का मुख्य आहार मछली की मुड़ी का झोल, भात और मछली की चटनी है। 'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास में काली कहता है कि साधारण व्यक्ति के लिए पेट भर भोजन प्राप्त होना ही स्वर्ग की प्राप्ति के समान है-

"गेहूँ की रोटी और जड़हने का भात
गल-गल नेनुआ और चिड़ तात।"[11]

इस नीरसता और संघर्षमय जीवन में ऊर्जा का संचार करते हैं पर्व-त्योहार। 'धार' उपन्यास में संथाल आदिवासियों द्वारा बधना और सरहूल पर्व मनाने का जिक्र है तो 'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास

में कुछ थारू बालाएँ सहोदरा माई का उत्सव पर्व मनाते हुए लोकसंगीत और लोकनृत्य से अपने आराध्य को प्रसन्न करने की कोशिश करती हैं। 'सूत्रधार' उपन्यास में भी 'पंचमी' के त्योहार का वर्णन मिलता है। इस त्योहर में महिलाएँ पारंपरिक गीत भी गाती हैं। उपन्यास में मेला का भी वर्णन है जो लोक समाज के लिए क्रय-विक्रय, मेल-मिलाप और मनोरंजन का प्रमुख केंद्र है। फिर भी वह सस्ती और मस्ती का जमाना था। दिनभर के हाड़तोड़ मेहनत के बाद किसान, मजदूर, बिरहा, चैता, सोरठी वृजभार, रामलीला इत्यादि लोक संगीत, लोककथा और लोक नाटकों में अपने गम को गलाते रहते। 'जंगल जहाँ शुरू होता' है उपन्यास में प्रौढ़ संन्यासी अपहरणकर्त्ता युवा सन्यासी को चाणक्य और चंदुगुप्त का लोककथा सुनाता है। 'दुनिया की सबसे हसीन औरत' कहानी में कथाकार ओराँव औरतों के चेहरे पर गुदे तीन गोदनों का उद्देश्य बताते हुए रानी सिनगीदाई, सेनापति की बेटी कैली दाई सहित महिलाओं का मर्दाना पोशाक में मुगलों से भीड़ जाने की लोककथा सुनाता है। लोकगीतों में हमारी संस्कृति बसती है। वैदिक काल से लेकर आज तक मानवीय संवेदना संस्कृति, पर्व-त्योहार, रस्म-रिवाज का संयोजन इन्हीं लोकगीतों से है। ये लोकगीत शास्त्रीय संगीत के समान नियमबद्ध नहीं होते हैं बल्कि इसमें सामान्य लोकव्यवहार, लोकभावना एवं लोकजीवन की सामयिक प्रस्तुति होती है। जीवन की प्रत्येक अवस्था हर्ष-विषाद, आशा-निराशा, सुख-दुख, जीवन-मृत्यु, संस्कार, श्रम, त्योहार, ऋतु की अभिव्यक्ति इन लोकगीतों के माध्यम से होती है। इसके प्रभावात्मक क्षमता का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि सदियों से श्रुति माध्यम के रूप में मुस्लिम और अंग्रेजी शासन को सहती हुई न सिर्फ जीवित है बल्कि हमारे संस्कारों को सँवारती रही है। सामुहिक नृत्य, गीत, मांझी गीत, बारहमासा, त्योहार के गीत, मेले के गीत, पारंपरिक छठ गीत, पहाड़ी गीत के साथ सामाजिक परिष्कार के गीतों का चित्रण संजीव के कथा-साहित्य में मिलता है। लोककलाकार भिखारी ठाकुर ने लोकनाटक और लोकगीतों के माध्यम से सामाजिक कुसंस्कार, अनमेल विवाह, नशाखोरी, दहेज के खिलाफ हल्ला बोला --

"रोपया गिनाई लिहल-अ, पगहा धराई दिहला-अ
चेरिया के छेरिया बनल-अ हो बाबू जी!"[12]

इसके अतिरिक्त भी विदेसिया, पिया निसइलन, नाई बहार आदि लोकनाटकों के माध्यम से गाँव-जवार की समस्या को पूरे देश में घूम-घूम कर उठाते रहे।

अत: आंचलिक प्रवृत्ति के अंतर्गत कथाकार ने अपने कथा-साहित्य में अंचल विशेष के भौगोलिक स्थिति, भारतीय संस्कृति, आंचलिक संस्कृति, रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, रस्म-रिवाज, आभूषण, खाप-पंचायत, लोककथा, लोक-संस्कृति लोकगीत, पर्व--त्योहार, मेला, लोक-विश्वास, चेतना, स्थानीय बोली, संस्कार आदि का सफल चित्रण किया है। ये आंचलिक उपन्यास निराशामय वातावरण में लोकजीवन में आशा और ऊर्जा का संचार करते हैं।

सातवां अध्याय: **'वैश्वीकरण का परिप्रेक्ष्य और संजीव का कथा-साहित्य'** के अंतर्गत वैश्वीकरण की अवधारणा, भारत पर वैश्वीकरण का प्रभाव, बड़े मॉल और वृहत्त उद्योग से दब कर दम तोड़ते छोटे व्यापारी और लघु उद्योग, सामंतवादी और महाजनी सभ्यता का विकसित रूप भूमंडलीकरण, बहुराष्ट्रीय कंपनियों के व्यापार बढ़ाते मध्यवर्गीय प्रतिभा, उपभोक्तावादी संस्कृति की बेतहाशा दौड़, नैतिक मूल्यों के पतन का काउंटडाउन, निजीकरण, तीसरी दुनिया को आर्थिक गुलाम बनाने की साज़िश, कला और शिक्षा पर भी बाजारवाद का प्रभाव आदि विभिन्न मुद्दों पर इस अध्याय में चर्चा की गई है।

भूमंडलीकरण ने पूरे विश्व को एक बाजार में परिणित कर दिया है और यह बाजार ही आज पूरे विश्व की अर्थव्यवस्था को नियंत्रित कर रहा है। इस पर अब किसी का नियंत्रण नहीं है जिसके कारण बाजार पर कुछ बहुराष्ट्रीय कंपनियों का एकाधिकार बढ़ता जा रहा है, लघु और कुटीर उद्योग उनसे प्रतिस्पर्द्धा न कर पाने की स्थिति में लुप्त होते जा रहे हैं। आज बाजारों में उत्पादों की कमी नहीं है परंतु उन उत्पादों को खरीदने की कुबत लोगों में नहीं है। महाजनी सभ्यता का विस्तार है यह भूमंडलीकरण।

आज व्यक्ति, समाज, साहित्य, संस्कृति, सभ्यता, भाषा कुछ भी बाजार से बाहर नहीं है। आज एक देश से दूसरे देश का संबंध अच्छा, बुरा या अच्छा, बुरा तो कितना अच्छा, बुरा होगा यह एक दूसरे देश के आयात-निर्यात संबंध पर निर्भर है। वैश्वीकरण के इस व्यापक प्रभाव में अपने समाज, संस्कृति, साहित्य और भाषा का अस्तित्व बचाये रखना सचमुच एक चुनौती है। आज जबकि विदेशी पूंजी का निवेश भारतीय उद्योगों में हो रहा है, तो हमारी भाषा और संस्कृति के भी नये अंतरराष्ट्रीय आयाम उभर कर सामने आ रहे हैं। आज हम अधिकांशत अंग्रेजी मिश्रित हिंदी का प्रयोग कर रहे हैं परंतु इसका दूसरा पक्ष यह भी है कि हिंदी वैश्विक हुई है। इसने इंग्लैंड, अमेरिका, कनाडा, इटली, पोलैंड, रूस, बुलगेरिया आदि देशों तक की यात्रा तय की है तो भारत के बाहर विश्व के सौ से अधिक विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ी एवं पढ़ाई जा रहा है। चूँकि अब विश्व एक ग्लोबल विलेज है, तो एक-दूसरे की संस्कृति का प्रभाव एक-दूसरे देश पर पड़ रहा है। साहित्य का विषय और भाषा दोनों ग्लोबल हुए हैं। वैश्वीकरण के इस दौर में बदलते हुए सामाजिक मानसिक परिप्रेक्ष्य को अंकित करने में हमारा साहित्य सक्षम है। हमारी संस्कृति भी इतनी सुदृढ़ और सशक्त है कि बाजारवाद के इस प्रभाव से मुकाबला कर पायेगी तथा विश्व को हम हमारी संस्कृति से मार्ग दिखाएंगे।

वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्यों को परिभाषित एवं विश्लेषित करती इनकी कुछ प्रमुख कहानियाँ किस्सा एक बीमा कंपनी की एजेंसी का, खोज, नस्ल, ट्रैफिक जाम, ब्लैकहोल, जे एहि पद का अरथ लगावे, हलफनामा, आहट इत्यादि है। मध्यवर्ग के अंदर पैदा हुए उपभोगवादी नजरिये का तीव्र विरोध वे अपनी पहली ही कहानी 'किस्सा एक बीमा कंपनी की एजेंसी का' में करते हैं। बीमा कंपनी के एजेंट द्वारा कार प्राप्त करने की उच्च आकांक्षा रखना सुविधालोलुपता के कारण है। यह सुविधालोलुपता

युवा समाज का संवेदनहीन बनाये जा रही है और वे आपास में भयानक प्रतिस्पर्द्धा का शिकार हो रहे हैं। पिछले तीन-चार दशकों में यह प्रवृत्ति खतरनाक ढंग से बढ़ी है। 'जे एहि पद का अरथ लगावे' कहानी में मानव का विकास उसके शोषण, आदिम युग से लेकर आवारा वित्तीय पूंजी के युग तक ग्रामीण आम जनता के जीवन यथार्थ को समझने का प्रयास है। उपनिवेशवाद, पूंजीवाद, सूचना क्रांति, बाजारवाद, शेयर बाजार, विश्वसुंदरी प्रतियोगिता, विज्ञापन युग सब इस कहानी के अंग हैं

'ब्लैक होल' कहानी उपभोक्तावादी संस्कृति के दौर में मनुष्य के गर्त में मिल जाने की कथा है। एक मध्यवर्गीय परिवार की बढ़ती हुई आकांक्षाएं, इच्छाएं और भौतिक सुख-सुविधाओं के पीछे अंधी दौड़ है। इस कहानी में एक सामान्य गृहणी अपने करोड़पति पड़ोसियों से प्रतिस्पर्धा करती है और उपभोग की सारी सामग्री न जुटा पाने के कारण पति को 'डल' कहती है। अपने छोटे से बेटे अंकुर के ऊपर पढ़ाई का इतना बोझ डाल देती है कि उसे रेस का घोड़ा बना देती है। अंतत: फिजिक्स की परीक्षा में एक न्यूमिरिकल हल न कर पाने के कारण 'अंक' आत्महत्या कर लेता है।

'नस्ल' कहानी में भी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ मध्यवर्गीय प्रतिभा को खरीद कर उसका इस्तेमाल अपने हित में करती हैं। जिस प्रतिभा का उपयोग परिवार, समाज, राष्ट्र, जाति या दुनिया की बेहतरी के लिए हो सकता था, वह बनिया का कारोबार बढ़ा रहा है।

अत: संजीव की आरंभिक कहानियों से लेकर अंतिम दशक तक की कहानियों में बाजारवाद और उससे उपजे गहरे संकट पर वचार-विमर्श है। वह पाठक को आत्म लोचन करने के लिए विवश करती है।

आठवां अध्याय: **'संजीव के कथा-साहित्य की भाषा एवं शिल्प विधान'** है। प्रस्तुत अध्याय में संजीव के कथा-साहित्य का भाषागत मूल्यांकन, बुंदेलखंडी, अवधी, गढ़वाली, बांग्ला, हिंदी-उर्दू मिश्रित बोलियों, संथाली बोलियों के साथ-साथ संस्कृत, अपभ्रष्ट, देशज, विदेशी, तकनीकी शब्दों का प्रयोग किया गया है। उपमान,मिथक, मुहावरें, लोकोक्तियों के प्रयोग ने भाषा की सुंदरता बढ़ाई है। शिल्प के क्षेत्र में कथावस्तु शिल्प, पात्र एवं चरित्र चित्रण शिल्प, वस्तु शिल्प, प्राकृतिक वातावरण, भौगोलिक स्थिति, उद्देश्य शिल्प आदि का प्रयोग किया गया है। आत्मकथात्मक, वर्णनात्मक, संवादात्मक, पात्रात्मक, डायरी, पूर्वदिप्त शैली आदि का प्रयोग किया गया है।

साहित्यकार संजीव ने अपनी लंबी साहित्यिक यात्रा में हर नय कृति के साथ अपनी भाषा और शैली का अतिक्रमण किया है। भाषा-शिल्प की दृष्टि से उनका कथा-साहित्य काफी समृद्ध है और अलग से एक गहन विवेचन की मांग करती है। उन्होंने अपने संवेदनाओं को शिल्प का जामा पहनाकर उसमें प्राण-प्रतिष्ठा कर पाठकों के सामने प्रेषित किया। रचनाकार अपनी रचनाओं को पाठकों तथा श्रोताओं तक पहुँचाने के लिए साहित्यिक संदर्भ में जिस सशकत और अर्थवान माध्यम का प्रयोग करता है वह भाषा है। आंचलिक शब्द, मुहावरे, लोकोक्ति, मिथक, बिंब, प्रतीक इत्यादि भाषा

के उपादान हैं जो कथ्य को अर्थवान और संप्रेषणीय बनाते हैं। संजीव का भाषा पर बेजोड़ पकड़ है। उनकी भाषा में लोक-जीवन और लोकतत्व रचता-बसता है। इसका कारण यह है कि कथाकार का जन्म गाँव में हुआ और जीवन के अधिकांश समय औद्योगिक कस्बे नुमा शहर कुल्टी में बीता। कारखाने में कार्य करते समय अलग-अलग प्रदेशों से आये अलग-अलग बोली-भाषा के लोगों से इनका साक्षात्कार हुआ। बीच-बीच में गाँव जाया करते थे। इसलिए इनकी भाषा में ग्रामीण जीवन की सादगी, देसीयता, आंचलिकता एवं विभिन्न लोकभाषाओं का ठेठपन मिलता है। महानगरीय कृत्रिमता और अभिजात्य संस्कृति से इनकी भाषा दूर है। इनकी भाषा सीधे-सीधे पाठक से संवाद स्थापित करती है। भाषा में जीवंतता है, जिसकी धड़कन पाठक के हृदय में महसूस की जा सकती है। पात्रों एवं परिवेश के अनुकूल भाषा बोलने से कभी-कभी अलग-अलग क्षेत्रों के पाठकों के लिए अबूझ होने का खतरा भी बना रहता है। इसलिए शब्दों की गहरी सोहबत में रहकर, भाषा को गहरे रूप से जीकर, चरित्रों और पाठकों के बीच संवाद सेतु का निर्माण करना भी रचनाकार की कलात्मक क्षमता का परिचायक है। कथाभाषा के संबंध में संजीव स्वयं कहते हैं कि किसी भी लेखक के सामने भाषा के स्तर पर चुनौतियाँ होती हैं। अव्वल तो वह जो कथा कह रहा है उससे एकमेक हो, दूसरे वह भाषा अपनी संपूर्ण कला-सामर्थ्य के साथ संप्रेष्य भी हो। पात्र और परिवेश को उभारने के क्रम में हम पाते हैं कि उसकी बात, उसकी अपनी वाणी, संस्कार, दबाव, सपने सबको निचोड़कर टपकती है, बूँद की तरह। इसलिए बतौर लेखक मेरी कोशिश रहती है कि मैं एकाकार हो सकूँ। इसी एकाकार होने में भाषा या बोली का सवाल आता है। अब यहाँ दूसरी दिक्कत खड़ी होती है -पात्र अपनी बोली बोलते हैं, अपनी-अपनी जमीन से और पाठक अपनी-अपनी। यहाँ भाषा को साध पाना कि वह अपनी पहचान, तेवर और ध्वनि भी बनाए रख सके और अबूझ भी न हो -पाठकों के लिए, यानी अपनी पहचान के साथ-साथ संवाद सेतु बना रहे, एक टेढ़ी खीर है। मेरी तो सिर्फ कोशिश रहती है कि मूल भाषा का एहसास बना रहे और बोध की पारदर्शिता भी। अत: प्रभावशीलता और संप्रेषणीयता की दृष्टि से अगर उनके कथा भाषा को देखना चाहें तो पात्रों के अनुकूल लोकभाषा के प्रयोग से उनकी रचनाओं में विश्वसनीयता और सजीवता आती है परंतु कहीं-कहीं वह पाठकों के लिए थोड़ी अबूझ भी बन जाती है।

भाषा की तरह उनकी शैली भी कथ्यानुरूप है। वे एक प्रयोगधर्मी कथाकार भी है। उनको इस बात की चिंता है कि प्रकृति के जैसे रूप, रंग, एवं गंध, ध्वनियाँ हैं, वैसी ताजगी रचनाओं में क्यों नहीं आती? अर्थात उनका उद्देश्य यथार्थवादी, जीवंत और विश्वसनीय अभिव्यंजना प्रस्तुत करना है जो पाठकों के मानस पटल पर अपना प्रभाव छोड़े। संजीव की कहानियों में नई-पुरानी, प्रचलित-अप्रचलित सभी शिल्प का प्रयोग कथानुरूप हुआ है। आत्मकथात्मक, वर्णनात्मक, महागाथात्मक, संवाद, साक्षात्कार, मनोविश्लेषणात्मक, प्रबंधात्मक, व्यंग्यात्मक, फैंटसी, डायरी, पत्र, भाषण इत्यादि शैलियों का प्रयोग कलात्मक ढंग से हुआ है। उनकी कहानी 'संतुलन' साक्षात्कार शैली में लिखी गई है तो 'मानपत्र' पत्र शैली में। 'दास्तान एक चमन की' में प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग है तो 'घर लौट चलो दुलारी बाई!' में संबोधन शैली का। 'सागर सीमान्त' लोककथात्मक शैली में तो 'खोज' प्रबंधात्मक शैली में लिखी गई

रचना है। 'प्रेतमुक्ति', 'धुँआसा आदमी' में फैंटसी शैली तथा 'सावधान! नीचे आग है' उपन्यास में फ्लैश बैक पद्धति का प्रयोग किया गया है। उनके कथा-साहित्य को किसी निश्चित खाका में बाँध कर रख पाना संभव नहीं है।

अत: संजीव के पात्र जितने जीवंत हैं उनकी भाषा भी उतनी ही जीवंत है। वे उस परिवेश की भाषा को हू-ब-हू उतारने में पूरी तरह सफल हैं जिसमें उनके पात्र सांस लेते हैं। यही कारण है कि उनके कथा साहित्य में अंग्रेजी, बांग्ला, संथाली आदि शब्दों का प्रयोग धड़ल्ले से मिलता है। उन्होंने कथानुरूप नई-पुरानी, प्रचलित-अप्रचलित सभी शैलियों का प्रयोग किये हैं।

सीमाएं, स्थापनाएं और मूल्यांकन

मूल्यांकन

संजीव समकालीन जनवादी कथाधारा के एक प्रमुख कथाकार हैं।र्सजक ने अपने कथा-साहित्य में 'कागद की लेखी' की जगह 'आंखन की देखी' को ज्यादा महत्व दिया है। वे एक परिवर्तनकामी कथाकार हैं। जातिगत विभेद, सामंती पूंजिवादी शोषण, और आर्थिक विषमता से सड़ांध मारता इस व्यवस्था के परिवर्तन के लिए बेचैन कथाकार हैं। उनका कथा-फलक अत्यंत व्यापक है। सत्य की खोज में वे बीहड़ अंचलों में भटकते हैं, जहां से वे अनछुए संदर्भों को ढुंढ लाते हैं। एक ओर जहां वे समतल से लेकर शिखर तक को अपनी लेखनी से वाणी देते हैं वहीं दूसरी ओर विज्ञान और तकनीक को भी अपने कथा-साहित्य का आधार बनाते हैं। उनके कथानक कोरी कल्पना नहीं होती अपितु यथार्थ की कसौटी पर कसे हुए होते हैं। संजीव के नारी पात्रों में दलित-गैर दलित, शिक्षित-अशिक्षित, पिछड़ी-आधुनिक सभी नारियां है परन्तु दलित, पीड़ित और प्रताड़ित नारियों के प्रति उनकी संवेदना अधिक है। प्रतिरोधी और कर्मठ नारियों को ही वे दुनिया की सबसे हसीन औरत मानते हैं। इनकी विचारधारा मार्क्सवाद से प्रभावित हैं परंतु अपराध से अवसाद तक आते-आते वह परिवर्तित हो जाती है। इनके कथा-साहित्य में बाजारवाद या उपभोक्तावाद के दूषपरिणामों का स्पष्ट रेखांकन हैं। ब्लैक होल, नस्ल और रह गईं दिशाएं इसी पार में इसकी नियति भयावह है। संजीव के यहां ग्राम अपने नग्न यथार्थ रूप में उभरा है। 'महामारी' कहानी में रंगई बहू की छह साल की बेटी अपनी उल्टी को काछकर फिर से खाने के लिए कटोरी में रखने के लिए बाध्य है जो ग़रीबी की अति है। ग्रामिण दयनिय स्थिति के समान इनके यहां शहरी मजदूरों के शोषित कष्टमय जीवन का भी वर्णन है। भूखे-रीक्ष, चुनौती, नेता, लांग-साइट आदि कहानियाँ मजदूरों की समस्याओं एवं यूनियनों तथा कारखानों के परिवेश पर आधारित है। इनकी अधिकांशतः कहानियाँ मध्यवर्ग की समस्याओं को आधार बनाकर मानविय संवेदनाओं की है। भाषा शिल्प की दृष्टि से उनका कथा-साहित्य काफी समृद्ध हैं और अलग से एक गहन विवेचन का मांग करते हैं। ये भाषा को स्थानीय बोली के संपर्क में लाकर उसमें जान फूंक देते हैं। अतः कुल मिलाकर जनता की पीड़ा और व्यथा को अभिव्यक्त करने के साथ-साथ

शोषण के कारणों को चिंहित करते हुए शोषक का पर्दाफाश वे अपने कथा-साहित्य के माध्यम से करते हैं।

सीमाएँ

अपनी अधिकांशतः कहानियों में संजीव निम्नमध्यवर्गीय जीवन, जातिवाद, सामंतवाद, पूंजीवाद, बाजारवाद, उपभोक्तावाद,, जनविरोधी विकास,अवसरवाद, नक्सलवाद, मजदूर आन्दोलन, मानवतावाद आदि विषयों के समस्याओं, सवालों और स्थितियों से जूझते है। इनकी कहानियाँ मानवीय रिश्ते और मानवतावादी मूल्यों की पड़ताल करती हैं उपभोक्तावादी छदम मूल्यों से सचेत करती है। प्रेम कहानियों के साथ-साथ नारी शोषण और नारी श्रम की भी कहानियाँ हैं। कथाकार के स्पष्ट वर्गीय दृष्टिकोण के कारण कथा-साहित्य में दो वर्ग स्पष्ट हो जातें है जिसमें से एक वर्ग उनपर एक निश्चित फार्मूले पर चलने का आरोप भी लगाता है। परन्तु इनके कथा तत्व की यही विशेषता है जिसे हम उनकी सीमा कह सकते हैं। कुछ कहानियाँ लंबे कलेवर तथा औपन्यासिक विस्तार लिए हुए है जहाँ कहानियों की सीमा थोड़ी टुटती दरकती नजर आती है। मजदूरों मलकटटों के पक्ष में खडा होना सराहनीय कार्य है परंतु कुछ कारखानों के बंद होने का एक प्रमुख कारण मजदूरों की अर्कमण्यता भी है। इस बात की चर्चा नहीं है। इनकी कहानियों के निश्चित ढाँचे में बाँध कर देखना संभव नहीं हे। ग्राम, अँचल, कस्बा शहर सब इनकी जद में है। इनकी कहानियों का महत्व कलात्मक दृष्टि से कम समाजशास्त्रीय दृष्टि से अधिक है।

स्थापनाएँ

नये-नये कथा क्षेत्रों की तलाश- मैदान, पहाड़, समुद्र, स्पेस, गाँव, शहर, कस्बा, सामंत, सेठ, मजदूर, अनछुए अंचल, उपेक्षित लोककलाकार, सर्कस, कोयलांचल, झारखंड-आंदोलन, शोध, अमरत्व, टेस्ट ट्यूब बेबी आदि को विषय बनाकर उन्होंने समकालीन यथार्थ को पूरे परिप्रेक्ष्य में उद्घाटित करने का प्रयास किया है। उपेक्षित और अभिशप्त संदर्भो को अपनी लेखनी से वाणी दिया- दलित, उपेक्षित और अछूत लोग, आदिवासी, किसान, कलाकार के पक्ष में खड़ा होकर अन्याय, अत्याचार, हिंसा, अपराध, उत्पीड़न, अवसरवादिता, अराजकता, भ्रष्टाचार, सूदखोरी, माफिया तंत्र, ठेकेदारी, सरकारी संपत्ति की लूट आदि विषयो को उद्घाटित किया। हार या जीत का परवाह किए बिना जूल्म के खिलाफ लड़ना ही बहादुरी है। इनके यहां हार भी श्रृंगार है। कठिन फिल्डवर्क और होमवर्क के कारण कहानियों में पाठकों को बांधे रखने और प्रभावित करने की क्षमता है। दुहराव का जोखिम उठाकर भी समसामयिक समस्याओं को उठाना, परन्तु कहीं भी दुहराव बोक्षिल नहीं है साहित्य को अश्लीलता से दूर रखना, साहित्य के स्तर को बचाने के लिए हंस के संपादक राजेंद्र यादव पर भी उंगली उठाने से नहीं हिचकते हैं। समस्याओं को उजागर करने के साथ-साथ उसके समाधान भी बताया है जैसे डाकू समस्या के मूल में असमान भूमि वितरण प्रणाली और बेरोजगारी है।

वे समाज में परिवर्तन लाना चाहते हैं और इसके लिए आंदोलन, संगठन और विरोध का स्वर ही उनका प्रमुख हथियार है। इनकी कहानियों में सूचनाएँ बहुत अधिक है परन्तु वे कहीं भी कथा रस को बाधित या पाठक को आतंकित नहीं करतीं हैं। विज्ञान का छात्र होते हुए भी उन्होंने हिंदी साहित्य में मौलिक योगदान दिया यह उनकी विशेषता है। इनके यहां अन्याय शोषण के खिलाफ विरोध का स्वर मुखर करने वाली नारी ही दुनिया की सबसे हसीन औरत है। युवती के रूप सौंदर्य, उम्र,नैन नक्श का कोई अर्थ नहीं है जो इन्हें औरों से अलग करता है। 'दुनिया की सबसे हसीन औरत' कहानी हिंदी साहित्य में अपने तरह की एक अगल और अकेली कहानी है। 'कठपुतली' की नायिका सेठ की रखैल कल्याणी दी सेठ से पत्नी का दर्जा की माँग करती है अर्थात् उनके स्त्री पात्र अपने अस्मिता के लिए संघर्ष करती हैं।

अंतर्वस्तु की दृष्टि से इनकी कहानियां एक विशेष प्रवृति रखती है, जो इन्हें औरों से अलग करती है। वे अपने कथा-साहित्य में विलुप्त हो रही शौर्य की परंपरा को तलाशते हैं। 'प्रेरणास्रोत' कहानी में लेखक की कल्पना और यथार्थ के संयोग से सृजित पात्र जंगली बहू वास्तविक जीवन में हरिजन और महिला कोटे से पंचायत का चुनाव जीतकर हर अन्याय का प्रतिकार करती हैं। यह चरित्र लेखक की कल्पना से आगे बढ़कर वास्तविक जीवन में इतना जुक्षारू हो जाती है कि लेखक को भी पुनर्जिवित कर देती है और दोनों एक दूसरे के लिए प्रेरणास्रोत बन जाते है। 'धावक' कहानी के भंबल दा हो या 'आरोहण' का भूपसिंह, ऐसे सच्चे ईमानदार और साहसी व्यक्तित्व है जो अपनी जिजिविषा और खुद्दारी के कारण हिंदी साहित्य के अविस्मरणीय चरित्र बन गये है। 'प्रेतमुक्ति' कहानी का जगेसर, 'मदद' का मेवालाल, 'अपराध' का शचिन, 'कदर' का बोदा, 'धनुष टंकार' की सुरसती ऐसे ही पात्र हैं जो भ्रष्ट व्यवस्था, सांप्रदायिकता, अन्याय एवं अत्याचार के खिलाफ संघर्षरत है।

आरंभिक कहानियों में नक्सली आंदोलन से प्रभावित दिखते हैं। अपराध जैसी कहानियां पढ़ने के बाद कहीं भी नकसलीयों से नफ़रत या घृणा नहीं होती है अपितु उल्टे उनके प्रति सहानुभूति जागृत होती है। 'अपराध' कहानी में वे नकसलपार्टी का समर्थन करते हुए व्यवस्था को कटघरे में खड़ा करते हैं परंतु 'पूत-पूत।पूत-पूत।।' कहानी में वे पार्टी को खुद कटघरे में खड़ा करते हैं।

संदर्भ सूची

1. काशिद गिरिश (संपा.), 'कथाकार संजीव', संजीव, 'मेरी यात्रा', संस्करण : 2008, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या - 11
2. काशिद गिरिश (संपा.), 'कथाकार संजीव', संजीव, 'मैं और मेरा समय', संस्करण : 2008, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या - 15
3. जैन निर्मला (संपा), 'साहित्य का समाजशास्त्रीय चिंतन', (आलेख -एलेन स्वीगवुड) "समाजशास्त्र

और साहित्य लेखक', (अनुवादक-निर्माला जैन), प्रथम संस्करण : 1986, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, मॉडल टाउन दिल्ली द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ -1,

4. पांडेय मैनेजर, 'साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका', (भूमिका-संग्रह त्याग न बिनु पहचाने) तृतीय संस्करण, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकुला, पृष्ठ संख्या - XI
5. पांडेय मैनेजर, 'साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका', (भूमिका-संग्रह त्याग न बिनु पहचाने) तृतीय संस्करण, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकुला, पृष्ठ संख्या - XII
6. यादव राजेंद्र, 'औरों के बहाने', प्रथम संस्करण : 1980, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या–33
7. काशिद गिरिश (संपा.), 'कथाकार संजीव', संजीव, 'मैं और मेरा समय', संस्करण : 2008, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या - 18
8. लोढ़े डॉ. रामचंद्र मारुति, 'संजीव व्यक्तित्व एवं कृतित्व', प्रथम संस्करण : 2012, ए. बी. एस. पब्लिकेशन, पृष्ठ संख्या - 26
9. काशिद गिरिश (संपा.), 'कथाकार संजीव', 'संजीव से डॉ. रविशंकर की बातचीत', संस्करण : 2008, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या - 89
10. संजीव, 'संजीव की कथा यात्रा', पहला पड़ाव, 'अंतराल', संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या - 233
11. संजीव, 'जंगल जहाँ शुरू होता है', पहला संस्करण : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या - 191
12. संजीव, 'सूत्रधार', प्रथम संस्करण : 2004, पहली आवृति : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या -- 102

संदर्भ ग्रंथ-सूची

आधार ग्रंथ

कहानी संग्रह

1. संजीव, तीस साल का सफ़रनामा, दिशा प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1981
2. संजीव, आप यहाँ हैं, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1984
3. संजीव, भूमिका और अन्य कहानियाँ, पराग प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1984
4. संजीव, दुनिया की सबसे हसीन औरत, यात्री प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1987
5. संजीव, प्रेरणास्रोत और अन्य कहानियाँ, किताब घर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1996
6. संजीव, प्रेतमुक्ति, दिशा प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1995
7. संजीव, ब्लैकहोल, दिशा प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1997

8. संजीव, डायन और कहानियाँ, नेशनल लिटरसी मशीन, प्रथम संस्करण : 1999
9. संजीव, खोज दिशा प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2000
10. संजीव, गति का पहला सिद्धांत मेधा बुक्स, दिल्ली, प्र. सं. सन् 2004
11. संजीव, गुफा का आदमी भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, प्रथम संस्करण : 2006
12. संजीव, संजीव की कथा यात्रा (तीन पड़ाव), वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2008
13. संजीव, झूठी है तेतरी दादी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2012

उपन्यास

1. संजीव, किसनगढ़ के अहेरी', मिनाक्षी पुस्तक मंदिर, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1981
2. संजीव, सर्कस' अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1984
3. संजीव, सावधान! नीचे आग है', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1986
4. संजीव, धार', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1990
5. संजीव, पाँव तले की दूब', प्रवीण प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1995
6. संजीव, जंगल जहाँ शुरू होता है', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2000
7. संजीव, सूत्रधार', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2002
8. संजीव, रह गईं दिशाएँ इसी पार', राजकमल प्रकाशन, प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2012
9. संजीव, फाँस' वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण :

पत्रिकाएँ

1. सम्पादक, हरिनारायण -"कथादेश', जून 1999
2. सम्पादक, कालिया रवीन्द्र -"वागर्थ', अगस्त, 2004
3. सम्पादक, अपूर्वानंद -"आलोचना', जनवरी-मार्च, 2015
4. सम्पादक, यादव राजेंद्र -"हंस', अगस्त, 2001
5. सम्पादक, उपाध्याय प्रवीण -"आज-कल', सितंबर, 1989
6. सम्पादक, चमनलाल -"जनसत्ता', 4 मई, 2001
7. सम्पादक, ज्ञानरंजन -"पहल पुस्तिका : दो फरवरी, 2000
8. सम्पादक, अकबर एम. जी -"जनमत', जनवरी-मार्च, 2003

सहायक ग्रंथ सूची

1. अमरनाथ, 'हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली', पहला छात्र संस्करण : 2012, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

2. काशिद गिरिश (संपा.), 'कथाकार संजीव', "मैं और मेरा समय', संस्करण : 2008, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली,
3. गुप्ता विश्वंभर दयाल (संपा), 'साहित्य : समाजशास्त्रीय संदर्भ', प्रथम संस्करण : 1987, सीता प्रकाशन,मोती बाजार, हाथरस
4. जैन निर्मला (संपा.), 'साहित्य का समाजशास्त्रीय चिंतन', प्रथम संस्करण : 1986, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, मॉडल टाउन, दिल्ली
5. दोषी एस.एल. एवं जैन पी.सी., 'प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक', संस्करण : 2001, रिपिं्रट : 2013, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, अर्थरस,
6. पांडेय मैनेजर, 'साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका', तृतीय संस्करण, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकुला
7. भूषण विद्या एवं सचदेव डी.आर., 'समाजशास्त्र के सिद्धांत', उन्तीसवां संस्करण : 2010, किताबघर प्रकाशन, इलाहाबाद,
8. मधुरेश (संपा), 'मैला आँचल का महत्व', तृतीय संस्करण : 2008, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद,
9. मिश्रा रत्ना, 'संजीव की कहानियाँ प्रेरणा और प्रयोग', पहला संस्करण : 2012, सहयोगी प्रकाशन कानपुर-दुर्गापुर,
10. लोढ़े रामचंद्र मारूति, 'संजीव व्यक्तित्व एवं कृतित्व', प्रथम संस्करण : 2012, ए.बी. पब्लिकेशन
11. शशि शशिभूषण कुमार (संपा), 'भूमंडलीकरण साहित्य, समाज और संस्कृति', प्रथम संस्करण : 2013, एक्सिस बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली
12. श्रीवास्तव और गरिमा, 'उपन्यास का समाजशास्त्र', प्रथम संस्करण : 2010, सुजन्या बुक्स, दिल्ली
13. श्रीवास्तव परमानंद (संपा), 'मैला आँचल, पुनर्पाठ/पुनर्मूल्यांकन', संस्करण : 2001, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद,
14. शुक्ल आचार्य रामचंद्र, 'हिंदी साहित्य का इतिहास', संस्करण : 1981, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी

15. सिंह बच्चन, 'साहित्य का समाजशास्त्र', संस्करण : 2011, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
16. सिंह फणीश, 'हिंदी के आंचलिक उपन्यास एवं उपन्यासकार', दूसरा संस्करण : 2015, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
17. हुसैन मुजतबा, 'समाजशास्त्रीय विचार', प्रथम संस्करण : 2010, पुनर्मुद्रण : 2012, ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली,